हृदयोपघात का अपवारण

डॉ. विश्वावसु गौड
असिस्टेंट प्रोफेसर,
महात्मा ज्योतिबा फुले आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, चौमू, जयपुर (राजस्थान)

(म.म. राष्ट्रपति-सम्मानित) प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़
पूर्व कुलपति,
डॉ. एस. आर. राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय जोधपुर

महर्षि चरक ने आयुर्वेद के प्रयोजन को एक सिद्धान्त के रूप में पुरःस्थापित करते हुए कहा है-"प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च|" (चरक सूत्र 30 /26) | यहाँ पर प्राथमिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण करना ही प्रथम प्रयोजन निर्दिष्ट किया गया है | इसके लिए सामान्य नीतिनिर्देशकसिद्धान्त को निर्दिष्ट करते हुए वे अत्यन्त ही सरल और सीधी बात कहते हैं कि-" व्यक्ति को प्रतिदिन इस प्रकार के आहार-विहार का सेवन करना चाहिए जिससे कि उसके स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता रहे" । इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक शरीर की प्रकृति, दोष, शारीरिक बल आदि पृथक्-पृथक् स्वरूप के होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्ति जिस देश में रहता है तथा उसमें परिवर्तित होता हुआ काल जिस प्रकार का होता है उसे अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए इन सब का ध्यान रखते हुए आहार-विहार करना आवश्यक होता है। इससे उसका शरीर जो मूलतः स्वस्थ स्वरूप का है वह स्वस्थ बना रहता है, इसे सिद्धान्त रूप में शब्दों में गुम्फित करके आचार्य कह रहे हैं कि-

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते|
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्|| (चरक. सूत्र. 5/13)

इस सिद्धान्त को उपदिष्ट करते हुए वे यह भी स्पष्ट कह रहे हैं कि केवल स्वास्थ्यानुवर्तन तक ही सीमित नहीं रहना है अपितु जो रोग उत्पन्न नहीं हुए हैं वे उत्पन्न नहीं हो जाएं इस प्रकार का ध्यान रखते हुए भी आहार-विहार का सेवन करना आवश्यक है। इसलिए प्रत्येक दिन अपनी जठराग्नि को ध्यान में रखते हुए उसके अनुरूप, देश, काल एवं स्वयं की प्रकृति के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति को आहार करना आवश्यक है तथा इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर सोना, उठना-बैठना, आना-जाना, करणीय कार्यों को करना, निषेधात्मक कार्यों से बचना आदि विहारपरक सम्पूर्ण प्रक्रियाएं इस प्रकार से ध्यान में रखकर करनी पड़ती हैं जिससे कि शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहें | इसके लिए आचार्य ने दिनचर्या और ऋतुचर्या के कुछ मापदंड निर्धारित किए हैं, जिनके अनुसार उपयुक्त आहार-विहारसम्बन्धी सम्पूर्ण प्रक्रियाओं को

सावधानीपूर्वक करने का निर्देश दिया है|

लेकिन इन सब का परिपालन करते हुए भी व्यक्ति मानवस्वभाववश कोई न कोई त्रुटि कर बैठता है वह अपथ्यात्मक आहार-विहार का सेवन कर लेता है या शारीरिक एवं मानसिक कर्म से उसकी दिनचर्या या ऋतुचर्या व्याघातित हो जाती है अथवा पर्यावरण से सम्बन्धित वायु, जल, देश और काल इनमें से सहसा कोई ऐसी विकृति आ जाए जो व्यक्ति के वश में नहीं रहे तो व्यक्ति के शरीर या मन में रोगपरक विकृति हो सकती है तब उसके लिए आचार्य ने यह जो दूसरा सिद्धान्त निर्दिष्ट किया है उसका सहारा लेना पडता है। इस सिद्धान्त में वे कहते हैं कि- **"आतुरस्य विकारप्रशमनं"** अर्थात् यदि किसी भी कारण से व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है तो उस रोग का शमन करने के लिए विभिन्न उपाय करने पड़ते हैं जिसे विकारप्रशमन या चिकित्सा कहते हैं|

इस विकारप्रशमन या चिकित्सा के लिए भी आचार्य ने दिनचर्या और ऋतुचर्या की तरह सामान्य रोगिचर्या एवं विशिष्ट रोगपरक चर्याओं का भी निर्देश किया है, जैसे मधुमेहचर्या, हृदयरोगचर्या, ज्वररोगचर्या, अतिसारचर्या इत्यादि अर्थात् जिस तरह का रोग है उसी के अनुसार उसे अपनी दिनचर्या में आहार-विहार आदि में परिवर्तन करना आवश्यक होता है। उसके लिए आचार्य ने प्रमुख रूप से उस रोग के हेतुओं का परिवर्जन करना एवं पथ्य का परिपालन करना तथा अपथ्य का त्याग करना निर्दिष्ट किया है।

वर्तमान काल में इस तरह की प्रक्रियाओं को लाइफस्टाइल कहकर यह प्रदर्शित किया जा रहा है कि यह कोई नवीन अनुसंधानपरक निर्देश है जिसमें रोगविशेष के अनुरूप व्यक्ति को अपनी चर्या करनी चाहिए, वस्तुतः यह सब प्राचीन काल से स्वास्थ्यसंरक्षण और आतुरविकारप्रशमन के संदर्भ में निर्दिष्ट किया जाता रहा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष में पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि जितनी भी परम्पराएं प्रचलित हैं उनमें प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने आयुर्वेद के स्वास्थ्यसंरक्षणपरक सिद्धान्तों को संयुक्त कर दिया, है अतः उन परम्पराओं के परिपालन में ही स्वास्थ्य निहित है किंतु वर्तमान काल में परम्परागत चर्या के परिपालन में व्यक्ति लापरवाह होता जा रहा है या विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों के वशीभूत होकर स्वास्थ्यानुवर्तन करने वाली प्रक्रियाओं का परिपालन नहीं कर रहा है, इसलिए अनेक रोग उत्पन्न होकर मानवसमूह को अधिकता से परिपीड़ित कर रहे हैं। ऐसे अनेक रोग हैं जो सम्पूर्ण विश्व में अपनी घातकता प्रदर्शित कर रहे हैं और अधिसंख्य लोग इन रोगों के कारण अनेक वर्षों तक परिपीड़ित रहते हुए अपनी सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक क्षमता से काम करने में असमर्थ होते हैं तथा ऐसे रोग विश्व में मृत्यु दर भी बढ़ा रहे हैं।

ऐसे ही अनेक रोगों में एक हृद्रोग भी है जो कि सम्पूर्ण विश्व में अधिकता से व्याप्त हो रहा है। भारत एक ऐसा देश

है जिसमें पारम्परिक रूप से सोमवार-मंगलवार आदि विभिन्न दिनों एवं एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या आदि तिथियों को ध्यान में रखकर भी शरीर को स्वस्थ रखने वाले आहार-विहार का प्रयोग या लङ्घन, उपवास, व्रत आदि का प्रयोग कर के शरीर को अजात विकारों से संरक्षित रखने का श्रेष्ठ संदेश देता आया है।

यद्यपि स्वास्थ्यानुवर्तन के परिपालन से शरीर प्रायः स्वस्थ रहता है लेकिन फिर भी शरीर में किसी न किसी रूप में दोषों का संचय भी होता रहता है जिसके अनेक कारण हैं। उन दोषों को व्रत, उपवास आदि के द्वारा या आयुर्वेदीय विशिष्ट प्रक्रियाओं (स्नेहन, स्वेदन, पंचकर्म आदि) के द्वारा शरीरस्थ विकृत दोषों का निर्हरण करने का पूर्णतया प्रचलन रहा है लेकिन वर्तमान में इन सब में न्यूनता होने से अनेक रोग उत्पन्न हो रहे हैं, जिनमें सबसे बड़ा कारण आहार और निद्रा का व्यवस्थित न होना है। इसके अतिरिक्त श्रम का अभाव एवं आस्यासुख (सुखपूर्वक बैठे रहने के स्वभाव) की अभिवृद्धि होने से ऐसे विशिष्ट रोग उत्पन्न होते रहते हैं। यहाँ हृद्रोग के विशिष्ट हेतुओं का संक्षेप में उल्लेख करके उनके अपवारण के उपायों की ओर भी संकेत इस लेख में किया जा रहा है|

महर्षि सुश्रुत एवं महर्षि चरक ने शरीर में 107 मर्म माने हैं, ये ऐसे विशिष्ट स्थल हैं जिनका विशेष रूप से संरक्षण करना परमावश्यक है। इन 107 में भी महर्षि चरक ने तीन विशिष्ट मार्मों की ओर विशेष ध्यान दिलाते हुए कहा है कि इन तीनों का विशेष रूप से ध्यान रखना परमावश्यक है अन्यथा इनमें होने वाली विकृति घातक होती है, ये तीन मर्म हैं- हृदय, बस्ति एवं शिरःप्रदेश| इन तीनों का संरक्षण विशेष रूप से करना चाहिए|

वर्तमानकाल में हृदय-रोगों की गणना उन विशिष्ट रोगों में की जाती है जिनसे कि विश्व में सर्वाधिक मृत्यु होने लगी है। यों तो शरीर के सभी अङ्ग महत्त्वपूर्ण हैं फिर भी हृदय, मस्तिष्क, वृक्क, फुफ्फुस, अग्न्याशय, आमाशय आदि अङ्गों का विशिष्ट महत्त्व है। अतः इनका संरक्षण आहार-विहार के माध्यम से किया जाना परमावश्यक है, इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की दिनचर्या को सुनिश्चित किया गया है, जिन्हें "लाइफस्टाइल" के नाम से सम्बोधित किया जा रहा है। इस क्रम में हृदय के लिए विशिष्ट "लाइफस्टाइल" निर्धारित की जाती है जिससे कि हृदय-रोगों से बचाव हो सके।

प्राचीन महर्षियों ने हृदय को एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग एवं मर्म भी माना है तथा उसके विकारों के अपवारण एवं निवारण के अनेक उपाय बताए हैं एवं उसके बाद में भी आयुर्वेद के विशेषज्ञों ने इनमें युगानुरूपसन्दर्भ में अनुभव एवं परीक्षणों के आधार पर अभिवृद्धि की है तथा सरल स्वरूप में जन-जन में प्रसारित भी किया है।

चरकसंहिता में हृदय को विशिष्ट महत्त्व प्रदान करते हुए इसके महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए ही एक विशिष्ट अध्याय **"अर्थे दशमहामूलीय"** निर्धारित कर उसमें विशिष्ट विश्लेषण एवं विवरण करते हुए इसके संरक्षण को प्राथमिकता प्रदान की है। यद्यपि इसके निदान एवम् चिकित्सात्मक अध्यायों को पृथक् रूप से निर्धारित किया है लेकिन

इस प्रकार का एक विशिष्ट अध्याय एकमात्र इसी अङ्ग के लिए देकर यह सङ्केत दिया है कि शरीर में हृदय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

महर्षि चरक कहते हैं कि सम्पूर्ण भावों की प्रतिष्ठा के लिए हृदय जिनका मूल स्थान है वैसे ही जिनका उद्देश्य है ऐसी महामूला और महाफला 10 धमनियाँ हृदय में आश्रित हो कर के रहती हैं। विद्वानों के द्वारा महत्, अर्थ और हृदय इन तीनों को परस्पर पर्याय मान कर निर्दिष्ट किया गया है। यथा-

अर्थे दश महामूलाः समासक्ता महाफलाः|
महच्चार्थश्च हृदयं पर्यायैरुच्यते बुधैः|| (च.सू.30/3)

हृदय को सभी अङ्गों में प्रधान माना है, वे कहते हैं कि 6 अङ्गों वाला शरीर हृदयाश्रित है- 1.विज्ञान अर्थात् बुद्धि 2.पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ 3. पाँच शब्द आदि इन्द्रियार्थ और 4. सगुण आत्मा 5. मन तथा 6. मन के जितने भी विषय हैं वे सभी हृदय में आश्रित होकर के रहते हैं। यथा-

षडङ्गमङ्गं विज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम्|
आत्मा च सगुणश्चेतश्चिन्त्यं च हृदि संश्रितम्|| (च.सू.30/4)

यह एक विशिष्ट महत्त्वपूर्ण संज्ञा आचार्य के द्वारा दी गई है और यह भी स्पष्ट कह दिया कि हृदय का उपघात होने पर इन षडङ्गादिभावों का भी उपघात होता है|

इस प्रकार से विशिष्ट स्वरूप के आधार पर हृदय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, अतः इसका संरक्षण किया जाना चाहिए। आचार्यों ने ओजस् को संरक्षित करने वाले अनेक भावों का निर्देश किया है, उन निर्दिष्ट समस्त भावों का परिपालन हृदय के संरक्षण के लिए परमावश्यक है। अतः जो वर्तमानकाल में हृदय की लाइफस्टाइल निर्धारित की गई है, वह हृदय के लिए कहे गए पथ्य और अपथ्य (हित और अहित) स्वरूप में बताए गए अनेक प्रकार के परिपालनीय और त्यागने योग्य भाव हैं। इसके अतिरिक्त हृदय-रोगों के हेतु निर्दिष्ट किए गए हैं, उन हेतुओं का परिवर्जन करना भी हृदय-रोगों से रक्षा करता है। इसी प्रकार से अनेक प्रकार के हृदय के विकारों के उपशमन के लिए विभिन्न योग कहे गए हैं उन विशिष्ट द्रव्यों का स्वस्थावस्था में भी प्रयोग करने का निर्देश वृद्ध वैद्य परम्परागत रूप से किया करते हैं, अतः उनका परिपालन करने से भी हृदय-रोगों का अपवारण होता है ।

विश्व स्तर पर मृत्यु के प्रमुख कारणों में हृदयरोग भी एक कारण है। सन् 2019 में हुए एक सर्वे के अनुसार विश्व में लगभग एक करोड़ 80 लाख लोगों की मृत्यु केवल हृदयरोग से हुई। केवल हृदयरोग से होने वाली मृत्यु की दर 32

प्रतिशत है, इसमें भी 85% मृत्यु केवल हृदयाघात से अर्थात् दिल का दौरा पड़ने से हुई।

हृदय का संरक्षण-

हृदय के लिए वह सब कुछ निरंतर प्रयुक्त करना चाहिए जिससे कि हृदय के स्वास्थ्य का निरंतर अनुवर्तन हो, हृदय सर्वदा पुष्ट रहे, सर्वदा सक्रिय रहे, अपने कार्य करने की क्षमता से युक्त रहे, इसके लिए विभिन्न उपायों को प्रयुक्त करते हुए हृदय के स्वास्थ्य का अनुवर्तन करने का सर्वदा प्रयत्न करना चाहिए।

हृदय के परिपालन के लिए आचार्य ने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्देश दिए हैं, जिनमें मन को दुःखी करने वाले या आघातित करने वाले हेतुओं का परिहार प्रमुख हैं। मन पर किसी भी प्रकार का दुःखात्मक प्रभाव होने पर सीधा हृदय प्रभावित होता है। अतः आचार्य कहते हैं कि-

परिहार्या विशेषेण मनसो दुःखहेतवः ॥ (च.सू.30/13)

हृदय का संरक्षण करने के लिए मन को दुःखी करने वाले हेतुओं का परिहार करना चाहिए, यह हृदय के संरक्षण का सर्वोत्कृष्ट एवं प्राथमिक उपाय है।

हृदयरोगों के अपवारण के लिए सैद्धान्तिक रूप से निम्नलिखित उपाय प्राथमिक रूप से करणीय हैं, यथा-

1. हृदय को, उस से सम्बद्ध महामूला धमनियों को (इनमें कोलेस्ट्रॉल जम नहीं होने देना चाहिए) और उस ओजस् को इन तीनों का प्रयत्नपूर्वक परिरक्षण करना चाहिए।

2. मन का दुःख के हेतुओं से विशेष रूप से परिहार करना चाहिए अर्थात् मन में किसी प्रकार के दुःख के भाव प्रकट नहीं हों, दुःख से मन आघातित नहीं हो।

3. तीसरा उपाय यह है कि जो आहार एवं औषध-द्रव्य एवं विहार हृदय के लिए हितकर (हृद्य) हैं उनको तथा जो ओजस् के लिए हितकर हैं उनको एवं जो स्रोतस् का प्रसादन करते हैं अर्थात् स्वच्छ रखते हैं (उनमें किसी प्रकार का अवरोध Blockage नहीं होने देते) ऐसे भावों का सेवन करना चाहिए।

4. चतुर्थ उपाय है प्रशम अर्थात् शांति के उपायों का सर्वदा सेवन करना चाहिए, मन को किस प्रकार से शांति मिले ऐसे उपाय करने चाहिए।

5. अंतिम उपाय है - ज्ञान होना अर्थात् तत्त्वज्ञान होना चाहिए (पारमार्थिक ज्ञान होना चाहिए), इस संसार के सत् एवं असत् स्वरूप का ज्ञान करने वाला व्यक्ति सर्वदा असद्भाव से परिहार करता है और सद्भाव का सेवन करता है।

व्यावहारिक रूप से निम्न उपाय करणीय हैं-

हेतुपरिहार-

हृदयरोग के कुछ प्रमुख हेतु हैं जो सीधा हृदय पर प्रभाव डालते हैं, इन हेतुओं का परिवर्जन करना हृदयरोगों का अपवारण करना ही है, ये हेतु हैं-

1. सद्यो हृदयरोगजनक हेतु-

हृदयप्रदेश पर किसी भी कारण से तीव्र आघात होना, क्षमता से अधिक व्यायाम करना, वर्तमान काल में जिम जैसे कृत्रिम व्यायाम के साधनों को क्षमता से अधिक प्रयुक्त करना या उनका सहसा प्रयोग करना, सहसा साहसिक कार्य करना, किसी भी कारण से तीव्र अतिसार हो जाना, तेज धूप या अन्य किसी कारण से अत्यधिक स्वेद होकर शरीर में द्रवांश की कमी होना, किसी भी कारण से आघात होकर अत्यधिक रक्तस्राव होना, अत्यधिक चिंता करना, सहसा प्राप्त शोक के समाचार को सहन करने की सामर्थ्य न होना, सहसा भयभीत हो जाना, किसी भी कारण से तीव्र एवं अधिक वमन होना ये ऐसे कारण हैं जिनसे सहसा हृदयाघात होकर मृत्यु भी हो सकती है और हृदय रोग भी हो सकते हैं|

2. हृदयरोगकारक चिरप्रभावी हेतु-

हृदयरोग के कुछ हेतु इस प्रकार के होते हैं जो निरंतर प्रयुक्त करने पर हृदय को शनैः शनैः विकृत करते हैं, इनमें आहार प्रमुख कारण है -

A. अवांछित उपवास, अनशन या कुपोषण आदि के कारण शरीर में कर्शन होकर हृदय प्रभावित होता है, इससे हृदयरोगों की उत्पत्ति होती है।

B. हृदयरोगों का सबसे प्रमुख कारण संकीर्ण भोजन है, जो शनैः शनैः हृदयरोगों को उत्पन्न करने में प्रमुख हेतु है। संकीर्ण भोजन में तिल, खीर, गुड का एकसाथ प्रयोग करना एवं चिपचिपे पदार्थों (पिच्छिल पदार्थों) का अधिक मात्रा में सेवन करना माना गया है, यह हृदय के लिए हानिकारक है। यथा-

तिलक्षीरगुडाजीर्णपूतिसङ्कीर्णभोजनात्|

क्लेदोऽसृक्कफमांसानां दोषलस्योपजायते|| (चरक सूत्र 17/27)

इस तरह के भोजन से शरीर में क्लेद (चिपचिपापन) उत्पन्न होता है, वर्तमान काल में इसे कोलेस्ट्रॉल उत्पन्न होने की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है

C. स्निग्ध पदार्थों एवं गरिष्ठ पदार्थों का अधिक मात्रा में निरन्तर लम्बे समय तक सेवन करना तथा उनके अनुरूप व्यायाम इत्यादि न करना हृदयरोग का प्रमुख कारण है। वर्तमान काल में जितने भी प्रकार की जंक फूड नाम से प्रसिद्ध आहार-कल्पनाओं का प्रमुखता से प्रचलन हो रहा है वे सभी प्राचीन आचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट संकीर्ण भोजन की श्रेणी में परिगणित हैं, इस तरह के संकीर्ण भोजन का सर्वथा परिहार करना परमावश्यक है, संकीर्ण भोजन हृदयरोग के प्रमुख हेतुओं में से एक है।

D. अस्वास्थ्यकर आहार हृददयरोगों का प्रमुख कारण माना गया है। अनावश्यक रूप से शरीर का मोटापा बढ़ाना और व्यायाम न करना इसके साथ ही प्रायः निष्क्रिय रहना प्रमुख कारण है। वर्तमान में बढ़ता हुआ मद्य का प्रयोग भी हृदयरोगों में का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। नमक से बनी आहारकल्पनाओं का अधिक प्रयोग भी वर्तमान काल में हृदयरोग का एक कारण है

3. हृद्रोगहेतुस्वरूपक रोग-

आचार्य चरक कहते हैं कि कुछ रोग ऐसे हैं जो दूसरे रोगों को उत्पन्न करते हैं, ऐसे रोग दूसरे रोग को उत्पन्न करके स्वयं शांत हो जाते हैं, लेकिन कुछ रोग ऐसे भी हैं जो दूसरे रोग को उत्पन्न भी कर देते हैं और स्वयं भी शरीर में बने रहते हैं, यथा-

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति|
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च|| (चरक. निदान. 8/21)

आचार्य के इस वचन को हृद्रोग की दृष्टि से देखें तो कुछ रोग ऐसे हैं जो हृदयरोग को उत्पन्न करते हैं, यथा-

मूर्च्छा, तीव्रज्वर, जीर्ण कास, हिक्का, श्वास, तृष्णारोग, छर्दि (वमनरोग) इत्यादि ऐसे रोग हैं जिनसे हृदयरोग उत्पन्न हो सकता है। ये ऐसे रोग हैं जो हृद्रोग के कारणरूप में भी एवं हृद्रोग होने के बाद उसके लक्षण रूप में भी उत्पन्न हो सकते हैं| इसके अतिरिक्त मधुमेह एवं वृक्कसम्बन्धी रोग सीधे हृदय को प्रभावित कर उसमें विकृति उत्पन्न कर देते हैं|

अतः इन रोगों के उत्पन्न होने पर हृदय का विशेष रूप से संरक्षण करना चाहिए|

हृदयरोगों से बचाव के उपाय एवं सेवनीय सामान्य द्रव्यों या औषधयोगों का उल्लेख पृथक् से अन्य लेख में किए जाने का प्रयत्न किया जाएगा।